



द्रव्यदृष्टि प्रकाशमें से, मार्गदर्शन विषय सम्बन्धित
पूज्य श्री निहालचंद्रजी सोगानीजी के
चयन किये गये वचनामृत

पहले तो धारणा बराबर होनी चाहिए; लेकिन धारणा अन्तरमें उतरे तभी सम्यग्ज्ञान होता है। धाराणामें भी लक्ष्य तो इधरका (आत्माका) होना चाहिए। ५२१.

उल्लास में उल्लास आ जावे, वह योग्य नहीं। (राग होना वह उतना अपराध नहीं है जितना कि राग का राग होना। क्योंकि राग का राग अनन्तानुबन्धीका कषाय है।) ५२६.

सुनना, पढ़ना, चर्चा करना—यह सभी ऊपर-ऊपरकी बातें हैं; असलमें तो अन्दरमें जम जाना चाहिए, स्वरूपमें ऊँड़े उतर जाना चाहिए। ५३०.

प्रश्न : शुरूआतवालेको अनुभवका कैसे प्रयत्न करना?
उत्तर : 'मैं परिणाम मात्र नहीं हूँ,' 'त्रिकाली ध्रुवपनेमें अपनापन स्थापना—यही एक उपाय है।
५३२.

एक ही 'मास्टर की' (Master Key) है; सब बातोंका सब शास्त्रोंका एक ही सार है - 'त्रिकालीस्वभावमें अपनापन जोड़ देना है'। ५३३.

इसका (ध्रुव-दृष्टिका) बल आए बिना, (जीव) दूसरी जगह अटकेगा ही। ५३५.

सुननेमें भी एकान्त उल्लास नहीं होना चाहिए, दीनता लगनी चाहिए, खेद होना चाहिए। (मुमुक्षुकी भूमिकामें जिसको स्वरूपप्राप्तिकी तीव्र लगन है उसे स्वरूपकी अप्राप्तिमें, सुनने आदिके भावमें भी असंतोष/खेद वर्तता है।) ५५१.

ट्रस्टके इस स्वानुभूतिप्रकाशके हिन्दी अंक (सितम्बर-२०२१)का शुल्क
श्री मणिभाई सावला, मुंबईके नामसे साभार प्राप्त हुआ है जिस कारणसे
यह अंक सभी पाठकोंको भेजा जा रहा है।

स्वानुभूतिप्रकाश

वीर संवत्-२५४६: अंक-२८४, वर्ष-२४, अगस्त-२०२१

आषाढ कृष्ण १०, बुधवार, दि. १३-७-१९६६, योगसार पर
पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का प्रवचन, गाथा-८५, प्रवचन-३३

‘सर्व असत् परपदार्थों के त्याग से और सत् निजपदार्थ के यथार्थ ग्रहण से आत्मा में ही निश्चय सत्यव्रत है।’ भगवान सत्स्वरूप परमात्मा, सत्यस्वरूप, सत्साहेब का अन्तर परमात्मा का दृष्टि में अनुभव किया तो उसमें परम सत्यव्रत भी आ गया। परम सत्यव्रत, व्यवहार सत्यव्रत का विकल्प वह तो (राग है)। आहा...हा...! परम सत्य का स्वीकार, परम सत्य का स्वीकार, परम पूर्णानन्द का स्वीकार और उसकी परिणति हुई तो उस परिणति की पर्याय में परम सत्य महाव्रत भाव भी प्रगट हो गया, निश्चय सत्यमहाव्रत आ गया। आहा...हा...! समझ में आया? यह सब हिन्दी (लोग आये हैं) तो हिन्दी में (व्याख्यान) करते हैं। दोपहर में गुजराती में करते हैं, उसमें थोड़ा सा हिन्दी आता है न इसलिए हिन्दी रखा है। दोपहर में गुजराती। यहाँ तो हिन्दी है, इसका हिन्दी अर्थ करना और फिर गुजराती करना। यह करने से कहा ऐसा लगाओ। आहा...हा...! भाषा निकलने की हो वैसी निकलती है। समझ में आया?

पुद्गल आदि गुण-पर्याय, राग की चोरी नहीं करते। भगवान आत्मा अपने अनन्त गुणरूप से विराजमान प्रभु, उसकी अनुभव में दृष्टि करके जहाँ अनुभव हुआ तो राग की पर्याय को अपने में नहीं लिया तो महा

अचौर्यव्रत प्रगट हुआ। आहा...हा...! एक राग का कण भी अपने में नहीं लिया और त्रिकाल आनन्दकन्द भगवान की निर्मल अचौर्यदशा प्रगट हुई। पर को पकड़े बिना अपनी पकड़ की और पर की पकड़ छोड़ दी। आहा...हा...! समझ में आया?

जहाँ चेतन तहाँ अनन्त गुण, केवली बोले एम। प्रगट अनुभव आपनो, निर्मल करो सो प्रेम।।

चेतन प्रभु चैतन्य सम्पदा रे तेरे धाम में... प्रभु! तेरे धाम में अनन्त सम्पदा विराजमान है। बैकुण्ठपना तेरे धाम में विराजमान है। आहा...हा...! वे बैकुण्ठ वहाँ ढूँढने जाते हैं। ‘मथुरा’ में है और अन्य कहे यहाँ है अथवा यहाँ है। यह कहता है मुक्तिशिला में है। यहाँ है। समझ में आया? आहा...हा...! सन्तोष रखने से आत्मा में ही निश्चय अचौर्यव्रत है।

भगवान आत्मा, परपदार्थ में एकाकार नहीं होकर परम ब्रह्मस्वरूप आत्मा में विहार करने लगा। स्वभाव की दृष्टि करने से एकाकार हुआ, वह ब्रह्मव्रत हुआ। ब्रह्मानन्द भगवान में एकाकार हुआ, वह ब्रह्मव्रत हुआ। पर्याय में ब्रह्मव्रत आ गया। निश्चय ब्रह्मव्रत, हाँ।

सर्व विकार और मूर्च्छा का त्याग... भगवान आत्मा में शुद्ध दृष्टि हुई, अनन्त गुण के पिण्ड को पकड़ लिया तो सर्व विभाव और पर की मूर्च्छा मिट गयी, वही

अपरिग्रहव्रत की परिणति है। आत्मा में निवृत्तरूप परिणमन हुआ, असंगभाव में रमण करने से परिग्रह त्याग व्रत भी हुआ। उसमें क्या नहीं आता? समझ में आया?

जब आत्मा, आत्मा में सत्यभाव से स्थिर हुआ तो निश्चय सामायिक भी आ गयी। लो, सामायिक (आयी)। कल सामायिक आयी थी न 'तत् सामायिक होई केवली भाखे ऐम' भाई! तेरे क्षेत्र में कहाँ गुण की हीनता है? तेरे क्षेत्र में कहाँ गुण की कमी है कि अपने क्षेत्र के सिवाय दूसरे क्षेत्र में तुझे दूँढना है। समझ में आया?

भगवान असंख्य प्रदेशी प्रभु, परम पारिणामिक स्वभावभाव का द्रव्यस्वभाव पिण्ड है। उदय आदि है, वे एक समय के हैं, भले वे असंख्यप्रदेश में व्यापक हैं। उदय-उपशम-क्षयोपशम क्षायिक, ये असंख्य प्रदेश में व्यापक हैं परन्तु उनकी स्थिति एक समय की है और भगवान त्रिकाल अनन्त गुण के पिण्डरूप परिणमन स्वभाव, वह है असंख्य प्रदेश में परन्तु उसकी स्थिति त्रिकाल है। समझ में आया? ऐसा भगवान त्रिकाल असंख्यप्रदेश में परम पारिणामिक अनन्त गुण का संग्रह रखता है। संग्रह... संग्रह... यह भगवान (आत्मा) संग्रहालय है। अनन्त गुण का संग्रहालय! आहा...हा...! यह बाहर के दाने, चाय और शक्कर संग्रह करते हैं, उसे संग्रह कहते हैं? संग्रह करते हैं। यह तो अनन्त गुण का संग्रहालय, कितने अनन्तानन्त केवली भी एक-एक समय में असंख्य गुण की बात करें, एक समय में तो उनकी करोड़ पूर्व की स्थिति आठ वर्ष में इतने नहीं कह सकते। स्वभाव है न! वस्तु और स्वभाव... वस्तु स्वभाववान। स्वभाव, वस्तुस्वभाव रहित होती है? स्वभाव।

ऐसा अनन्तगुण का पिण्ड प्रभु, उसमें एकाकार होने से, कहते हैं कि सत्यभाव का आदर हुआ। सत्यरूप

स्वभाव भगवान आत्मा की एकाग्रता हुई, यह सत्य का आदर हुआ, वह सामायिक है। जब वीतरागता हुई, आत्मा की दृष्टि करके अनुभव किया, जहाँ आत्मा वहाँ



अनन्त गुण... 'तब भूतकाल के बँधे हुए कर्मों के प्रति वीतरागता होती है और वे कर्म स्वयं निर्जरा को प्राप्त होते जाते हैं, इसलिए वहीं निश्चयप्रतिक्रमण है।' निश्चयप्रतिक्रमण हुआ। भगवान आत्मा अपना अनन्त गुणरूप एक द्रव्यस्वरूप का अनुभव करने से उसकी पर्याय में भूतकाल के रागादि का नाश हो गया।

निवृत्तरूप परिणमन हुआ, वही निश्चयप्रतिक्रमण है। समझ में आया?

'भविष्य में होनेवाले विभावों का भी त्याग हुआ...' उसका नाम निश्चयप्रत्याख्यान है। अपने यह सब आ गया है। पहली गाथा, नियमसार, नहीं? कौन-सी गाथा? समाधि पहले की न? प्रायश्चित्त? प्रायश्चित्त की पहली गाथा। व्रत, नियम सब (लिया है) मूल पाठ - पाँच महाव्रत, गुप्ति और समिति सब आत्मा की पर्याय में समा जाते हैं। निर्मल, हाँ! यह आ गया है। मूल पाठ में है। निश्चय... निश्चय... समझ में आया? भगवान आत्मा में अन्तरस्वरूप का आश्रय किया (वहाँ) उसकी दशा में क्या कमी रह गयी? ऐसा कहते हैं। सभी गुण, जितना तुम कहते हो उन सब गुण की पर्याय का परिणमन प्रगट हो गया। समझ में आया?

'एकाग्रभाव में लीन है...' भगवान आत्मा अपने गुणों में अथवा गुणी में एकाग्र है। 'वही (गुण की) निश्चय स्तुति है।' इसका नाम स्तुति हुई। समयसार ३१ गाथा में कहा है न? कुन्दकुन्दाचार्यदेव को पूछा - प्रभु! केवली की स्तुति किसे कहते हैं? भगवान! केवलज्ञानी की स्तुति आप किसे कहते हैं? तो

उत्तर देते हैं। हम तो पूछते हैं कि केवलज्ञानी की स्तुति किसे कहते हैं? तो कहते हैं कि तेरा अनन्त गुणरूप एक द्रव्य अतीन्द्रिय स्वरूप का अनुभव कर, यह केवलज्ञान की स्तुति है। जवाब यह दिया है। मैं तो केवली परमात्मा भगवान केवली की स्तुति पूछता हूँ। पण्डितजी! ऐसा उसमें आया न? केवलज्ञान की स्तुति पूछता हूँ, प्रभु! केवलज्ञान की स्तुति तो हम उसे कहते हैं, 'जो इंदिये जिणित्ता णाणसहावाधियं मुणदि आदं।' आहा...हा...! भाई! तेरा आत्मा राग और विकल्प से पार अधिक / भिन्न चिदानन्द एकरूप स्वभाव है - ऐसी दृष्टि का अनुभव करना, उसे ही हम केवलज्ञानी की स्तुति कहते हैं। परन्तु मैं पूछता हूँ कि भगवान की स्तुति किसे कहते हैं? और आप ऐसा कहते हो? सुन तो सही! आहा...हा...! वे कहते हैं, जब व्यवहार की बात चलती है तब निश्चय की बात करते हैं। वे, तलोद... तलोद में पहले आते थे। भगवान सुन न भाई!

भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव को पूछा कि महाराज! आप केवलज्ञानी की स्तुति किसे कहते हो? (तो कहते हैं कि) हम केवलज्ञानी की स्तुति तो उसे कहते हैं कि अपना ज्ञानानन्दस्वभाव राग से अधिक अर्थात् भिन्न, विकल्प से भिन्न, निमित्त से भिन्न और कर्म से भी भिन्न तथा अपने अनन्त गुण से अभिन्न द्रव्य, ऐसा अनुभव करनेवाला केवली की स्तुति करता है - ऐसा हम नहीं, सर्वज्ञ ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! यह सर्वज्ञ कहते हैं। कौन कहते हैं? 'केवली बोले ऐम'। भगवान ऐसा कहते हैं कि हमारी स्तुति का अर्थ क्या? कि तेरे अनन्त गुण में एकाकार होना, वही केवली की स्तुति है। समझ में आया? स्तुति हुई न?

(अब) आराधना... भगवान आत्मा विकल्प से हटकर, भगवान पूर्णानन्द की ओर की आराधना हुई, सेवन हुआ, स्वभाव सन्मुख की लीनता हुई तो कहते हैं कि वही अपना विनय करता है, वही निश्चय वन्दना, गुरु की वन्दना है। तख्तमलजी! यह बात अद्भुत, भाई! भगवान! तेरी तो सर्वस्थिति तुझमें ही समा जाती है।

परमेश्वर ऐसा कहते हैं। परमेश्वर ऐसा कहते हैं कि हम यह कहते हैं। आहा...हा...! जिनको एक समय में तीन काल-तीन लोक स्वयं की पर्याय में ज्ञात हो गये हैं, पर्याय में ज्ञात हो गये, हाँ! एक गुण की एक पर्याय एक समय में तीन काल-तीन लोक का ज्ञान एक समय में आ गया। उन भगवान की वाणी में ऐसा आया कि तेरी वस्तु भगवान अखण्ड अभेद की दृष्टि कर, अनुभव कर। यही गुरु की वन्दना है, यह गुरु की वन्दना है। आहा...हा...! भगवान कहते हैं कि यह गुरु की वन्दना है। यह बाहर से गुरु की वन्दना करते हैं, वह तो विकल्प है, व्यवहार है, पराधीनता है। यह होता है, वह अलग बात है परन्तु वह वस्तुस्थिति नहीं... होता है, व्यवहार बीच में आता है। जब तक निश्चय में पूर्णता प्राप्त न होवे, तब बीच में व्यवहार आये बिना नहीं रहता। राग आता है, भक्ति, स्तुति, वन्दन, पूजा (का भाव आता है) परन्तु उसकी मर्यादा पुण्य-बन्ध की है। उससे आगे ले जाओ तो वस्तुस्थिति में वह समाहित नहीं हो सकता। समझ में आया? लो, यह वन्दना हुई, ठीक!

'अपने में स्थिरता कर ले, वही निश्चय कायोत्सर्ग है।' यह कायोत्सर्ग हुआ। यह अपने आगे आ गया है, नियमसार में आ गया, कायोत्सर्ग। सात गाथा है। कायोत्सर्ग योग का। यह योगसार है तो इसमें भगवान ने योग लिया है। आत्मा पूर्णानन्द प्रभु अभेद वस्तु में जुड़ान करना। योग... योग... योग... जुड़ान (करना) बस! उसका नाम कायोत्सर्ग है। कायोत्सर्ग... आत्मा... एकान्त हो जाता है, ऐसा कहते हैं। हमारे व्यवहार का तो कोई मूल्य नहीं रहता... व्यवहार से कुछ लाभ होता है, यह कुछ (नहीं कहते)। भगवान! व्यवहार है तो निश्चय है - ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : कर्म तो कम बँधते हैं न?

उत्तर : बिल्कुल कम नहीं। वह तो स्वभाव का आश्रय हुआ, उतना बन्धन घट गया है।

मुमुक्षु : व्यवहार है तो निश्चय है?

उत्तर : व्यवहार है तो निश्चय है - ऐसा नहीं है।

राग की मन्दता है तो अराग परिणमन है, ऐसा है? ऐसा नहीं है, परन्तु व्यवहार बीच में आये बिना नहीं रहता। आहा...हा...! पूर्ण आश्रय जब तक न हो, भगवान आत्मा का पूर्ण आश्रय जब तक न हो, तब तक वहाँ पराश्रय में भगवान कहते हैं वैसा व्यवहार आये बिना नहीं रहता परन्तु उसकी मर्यादा जानता है। उस काल में जाना हुआ प्रयोजनवान है - ऐसा अमृतचन्द्राचार्य महाराज (समयसार में) बारहवीं गाथा में कहते हैं। पण्डितजी! बारहवीं गाथा है न? 'सुद्धो सुद्धादेसो णादव्वो परमभावदरिसीहिं।' वहाँ यदात्वे ऐसा संस्कृत में पाठ है। यदात्वे उस काल में जाना हुआ प्रयोजनवान है। जब तक सर्वज्ञ न हो, तब तक (जाना हुआ प्रयोजनवान है)।

मुमुक्षु : किया हुआ प्रयोजनवान नहीं?

उत्तर : किया हुआ नहीं। करे क्या? जाना हुआ प्रयोजनवान है। तेरहवें वर्ष में इन्दौर में भी कहा था, व्याख्यान हुआ था, तब 'बंशीधरजी' थे न? सोलापुर के, वे आये थे, हम वहाँ उतरे थे न, क्या कहलाता है वह? नसियाजी... नसियाजी...। पहले वहाँ उतरे थे, वहाँ आये थे। पहले तो आकर कहा मैं अभिनन्दन देता हूँ। (मैंने कहा) क्या है? ऐसे साधारण गरीब जैसे लगते हैं। पण्डितजी आये हैं - ऐसा पता नहीं (आकर) पैरों में गिर गये (और कहा) अभिनन्दन देता हूँ। कहा क्या है? तुम कौन हो? बंशीधरजी! कहाँ के! अरे... पण्डितजी! आपने कहा व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है, ऐसी बात अभी तक तो हमने सुनी नहीं। व्यवहार है यदात्वे उस काल में... उस काल में अर्थात् उसमें विशेषता है। जितना स्वभाव का आश्रय करके शुद्धता प्रगट हुई, वह तो निश्चय है और जितना अभी राग बाकी रहा, उतनी शुद्धता की अल्पता और राग का ज्ञान करना उस काल में, फिर शुद्धता की वृद्धि हुई और राग घटा तो उस काल में उतना ज्ञान करना, वह प्रयोजनवान है। उतनी-उतनी जैसे जैसे शुद्धि बढ़ती जाए और राग घटता जाए, उस प्रकार का ज्ञान वहाँ करना, वह प्रयोजनवान है। उस-उस काल में वैसा ज्ञान करना, वह प्रयोजनवान है। समझ में

आया? भाई! वस्तु की स्थिति ऐसी है।

व्यवहार है तो निश्चय है - ऐसा नहीं है, दोनों में अन्तर है। दोनों की दिशा में अन्तर है। दोनों के फल में अन्तर है और दोनों के भाव में अन्तर है, भाई! क्या हो? यह कहाँ कोई वस्तु बदली जा सके ऐसी है? कि भाई! नहीं... नहीं... यह सबको ठीक लगे तो ऐसा कहो। भाई! तुझे ठीक ही इसमें पड़े ऐसा है, हैं? आहा...हा...! आत्मा शुद्ध प्रभु आत्मा है। तुझे कहीं ठीक न लगे तो वहाँ ठीक लगे ऐसा अन्दर में है।

बहिन ने (बहिनश्री ने) एक बार कहा था, कहीं न रुचे तो आत्मा में रुचे ऐसा है, समझ में आया? आहा...हा...! पता है? बात तो यही है, शब्दों में फेर है। आत्मा, भगवान आत्मा, तुझे कहीं ठीक न लगे तो जा अन्दर! समझ में आया? तेरे हाँकने से कोई साथ न आवे तो तू अकेला जाना, तुझे किसी का क्या काम है? कि अरे...! हम ऐसी बात करते हैं और यह (मानते नहीं) अब तुझे काम क्या है? हाँकल, वाणी जड़ है, विकल्प है वह बन्ध का कारण है कोई समझे न समझे वह कोई तेरे आश्रित नहीं है। कहो, समझ में आया?

'अकेला जाना रे' आता है न कहीं? नहीं? क्या आता है? 'मेघाणी', 'नहीं', मूल तो 'रविन्द्रनाथ टैगोर' का है। वह तो उनकी शैली से बात है, अपनी दूसरी शैली है, हाँ! 'तेरी पुकार सुनकर कोई न आवे तो अकेला जाना रे...' यह श्लोक अभी आयेगा, यह आयेगा। एक्कलउ यह छियासी (गाथा में भी) आयेगा। छियासी गाथा का पहला शब्द है। यह पिच्चासी (गाथा) अपने चलती है न? छियासी में है। पण्डितजी! छियासी है न? यह गाथा एक्कलउ यह छियासी गाथा है। अपने पिच्चासी चलती है। एक्कलउ इंदिय रहियउ अकेला इंदिय रहियउ भगवान!

योगसार तो अलौकिक बात। दिगम्बर सन्तों की क्या बात! ओ...हो...! इनके तो एक-एक श्लोक में चौदह पूर्व का सार है। सन्त, जिनकी अन्तरदशा छठवें-सातवें... आहा...हा...! क्षण में अन्तर्मुहूर्त में, यह

अन्तर्मुहूर्त अर्थात् पौन सेकेण्ड कहलाता है। असंख्य समय को भी अन्तर्मुहूर्त कहते हैं, छोटे को। परन्तु वह पौन सेकेण्ड रहा। परन्तु अन्तर्मुहूर्त कहलाता है, असंख्य समय है। पौन सेकेण्ड में भी असंख्य है, हाँ! और इससे आधा काल सातवें का। क्षण में अतीन्द्रिय आनन्द, क्षण में यह (विकल्प); क्षण में यह (आनन्द)। एक दिन में हजारों बार छठा-सातवाँ यह भी कोई बात! प्रतिक्षण साक्षात् परमात्मा का स्पर्श करते हैं, वह तो फिर मन्द पुरुषार्थ है, इसीलिए शीघ्र विकल्प उठता है। छठवें का प्रमाद विकल्प वह बन्ध का कारण है। इतम... इतम... ऐसा जाता है। ऐसे जाए वहाँ सातवाँ, ऐसी दशा मुनि की। उन्होंने यह श्लोक बनाये हैं, लो! बनाये हैं अर्थात् उनका निमित्त है। समझ में आया?

‘वही निश्चय कायोत्सर्ग है...’ कहो, ठीक! यह तीन गुप्ति भी यह है, भगवान आत्मा! अपने निज स्वरूप में अन्दर में सावधान... सावधान... सावधान... होकर, दृष्टि ज्ञान और चारित्र - तीनों अन्दर में एकाकार हुए तो तीन गुप्ति हो गयी। वहाँ तीन गुप्ति हो गयी, मन-वचन-काया, सबका अवलम्बन नहीं रहा। इसमें ही तीनों गुप्ति हो गयी। ओ...हो...! पाँच इन्द्रियों का निरोध स्वयं हो गया। लो! पाँच इन्द्रियों का लक्ष्य नहीं रहा। अतीन्द्रिय पर स्वयं एकाकार हो गया। उसका नाम संयम है। समझ में आया? उसका नाम उत्तम क्षमा है, इत्यादि दूसरे धर्म ले लेना।

‘समस्त ही शुद्धगुणों को निवास आत्मा में है। जिसने आत्मा का आराधन किया, उसने सर्व आत्मिक गुणों को आराधन कर लिया। आत्मा के ध्यान से ही आत्मा के गुण विकसित होते हैं।’ विकसित अर्थात् पर्याय में प्रगट होते हैं। समझ में आया? ‘श्रुतज्ञान की पूर्णता होती है।’ अपने स्वरूप में एकाकार होने से श्रुतज्ञान की पूर्णता होती है। पढ़ने-लिखने से कोई पूर्ण ज्ञान होता है? ‘अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान की रिद्धि प्रगट होती है...’ यह

रिद्धि है, वह साधन नहीं है। अवधि, मनःपर्यय (ज्ञान) कहीं मोक्ष का साधन नहीं है परन्तु बीच में रिद्धि (प्रगट होती) है। आहा...हा...! मति-श्रुतज्ञान तो साधन है, स्वरूप में एकाग्रता होकर केवलज्ञान लेते हैं। यह तो बीच में एक रिद्धि आती है। अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान की रिद्धि प्रगट होती है, केवलज्ञान का लाभ होता है... लो! निर्वाण का परम उपाय एक आत्मा का ध्यान है... लो!

‘तत्त्वानुशासन में कहा है - जो वीतरागी आत्मा, आत्मा में आत्मा के द्वारा आत्मा को देखता है और जानता है, वह स्वयं सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप होता है।’ ‘दृगवगमचरणरूपस्य’ ऐसा है न? तीसरा पद। आहा...हा...! ‘तत्त्वानुशासन...’ समझ में आया? स्वयं सम्यग्दर्शन आदि (रूप होता है) ‘इसलिए निश्चय मोक्षमार्गस्वरूप है - ऐसा जिनेन्द्र भगवान कहते हैं।’ ‘जिनोक्तिः’ ऐसा है। देखो, ओ..हो...! दिगम्बर सन्त भी जहाँ-तहाँ भगवान को मुख के आगे रखते हैं, हाँ! परमात्मा ऐसा कहते हैं, भाई! हम कहते हैं, वह परमात्मा कहते हैं। सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ (कहते हैं) इंकार मत करना, हाँ! इंकार मत करना। हैं? बहुत दया, करुणा (करके कहते हैं) भाई! मार्ग तो ऐसा है प्रभु! केवली ऐसा कहते हैं। देखो, इसमें भी केवली आया। उसमें (छियासी गाथा में) ‘जिनोक्तिः’ आया। उसमें केवली कहते हैं ऐसा आया (छियासी में) ‘जिनोक्तिः’ कहते हैं। ‘जो इंदिये जिणित्ता णाणसहावाधियं मुणदि आदं।’ उसमें मुनि कहते हैं - ऐसा आया था।



पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा परमागमसार
ग्रंथके वचनामृत-२४६ पर भाववाही
प्रवचन, दि. २१-५-१९८३, प्रवचन
क्रमांक-१०६ (विषय : मार्गदर्शन)

यदि ब्रह्मचर्य आदि व्रत ले, वस्त्रादि छोड़े
तो उसे ऐसा लगता है कि मैं धर्ममार्गमें कुछ
आगे बढ़ा हूँ, परन्तु आत्मभान-बिना उसने
उल्टे शल्यकी वृद्धि की है-मिथ्यात्वकी पुष्टि
की है। २४६.

(३४:५० मिनटसे आगे)

सामान्यतः धर्मके क्षेत्रमें जो जीव प्रवेश करते हैं वे तो आत्महित करनेकी भावनासे आते हैं। तो आत्महित करनेकी भावनासे आते हैं उस भावनामें वह कोई न कोई दूसरे रास्ते पर चढ़ जाता है। शुरूआतसे ही जो बाह्याचरणको मुख्यता देकर विपरीत मार्ग पर चढ़ जाये और मिथ्यात्वके शल्यको एवं मिथ्यात्वको पुष्ट कर देते हैं, ऐसा न हो इसीलिये ऐसा कहते हैं कि भले ही तुम्हारे परिणाम मंद कषायके हो और बाह्याचरण जगतके अन्य पापी प्राणियोंकी अपेक्षा तेरा बाह्याचरण शुभ आचरणयुक्त हो तो भी तू धर्म और धर्मके कारण इस बातको गलतीसे भी मत खताना। यह आचरणप्रधान मान्यताका सम्बन्ध क्या है यह बात स्पष्ट करनी है। २४५ और २४६का जो पॉइन्ट ऑफ व्यु है—उसका जो दृष्टिकोण है वह एक समान है कि आचरणके कारण कोई मान्यताकी भूल रह जाये अथवा आचरणके कारण मान्यताकी भूल पुष्ट हो जाये ऐसी भूल नहीं होनी चाहिये। यह दृष्टिकोण दोनोंमें एक समान है।

मुमुक्षु :— ...

पूज्य भाईश्री :— परन्तु उतनी तो उसकी जागृति

होनी चाहिये कि मुझे पूर्ण शुद्ध होना है, मुझे संपूर्ण शुद्ध होना है, कषाय-कलंकका एक कण मुझे नहीं चाहिये। कब नहीं चाहिये? कि अभीसे नहीं चाहिये। भविष्यमें नहीं चाहिए ऐसा नहीं। अभी, आज ही और अभी पूर्ण हुआ जाता हो तो थोड़ी देर बाद और कल होना है यह बात मुमुक्षुको नहीं है। उसे बाह्याचरणकी उतनी मुख्यता नहीं होती जितनी मान्यताके सम्बन्धमें मूलमें फेरफार करना है उसकी मुख्यता आती है।

देखिये! सम्यग्दर्शन प्राप्त करनेवाले एक जीवके मंद कषायका विचार करे तो भले उसने बाहरमें व्रत, शील, संयमके परिणाम अंगीकार नहीं किये हो तो भी कषायकी मंदता उसे कितनी होती है उसका यदि विचार करें तो बहुभाग वह जीव तत्त्वज्ञानकी विचारणामें रहता है। तत्त्वके मननमें, चिंतनमें, मंथनमें और घोलनमें उसका जो काल व्यतीत होता है, वह बाहरमें ब्रह्मचर्य आदिके परिणामसे भी बहुत कषायकी मंदतावाले परिणाम हैं। वहाँसे भी कोई जीव सम्यग्दर्शनके प्रति आगे बढ़ता है, तब वह जो भेदज्ञान करता है उसमें आत्माके स्वरूप और स्वभाव प्रतिके विकल्प उत्पन्न होते हैं उससे भी भिन्न पड़कर ज्ञानमात्र हूँ ऐसे अन्दरमें भेदज्ञान करता है

उस वक्त उसे जो कषायकी मंदताके परिणाम हैं वह तो बहुत ही उच्च कक्षाके कषायकी मंदताके परिणाम हैं। परन्तु उस कषायकी मंदताका और बाह्याचरणका कोई दिखाव नहीं होनेसे लोग उस मंदताको समझ नहीं सकते। लेकिन बाहरमें यदि कोई व्रत, नियम, संयम ले ले तो उसे लोग समझते हैं कि, हाँ, ये इतना नहीं करता, ये इतना नहीं करता, ये इतना नहीं करता, उतनी तो उसकी कीमत है न? समझमें आया? लेकिन उस प्रकारके कषायकी मंदताके परिणामकी अपेक्षा, सम्यग्दर्शन प्राप्तिके प्रयत्नके कालमें जो कषाय मंद हुआ वह तो अत्यंत ऊँची कक्षाके कषाय मंदताके परिणाम हैं। और उस कषायकी मंदताके परिणाम उतने ऊँचे होनेपर भी उसे गिनतीमें नहीं लेता। बड़ी बात तो यह है कि उच्च कक्षाका व्यवहार होनेके बावजूद उस व्यवहारको वह प्राधान्यता नहीं देता, उसकी मुख्यता नहीं करता इसीलिये उसे शल्य नहीं बँधता। मिथ्यात्वकी पुष्टि नहीं होती। अपितु मिथ्यात्व गलनेका एक प्रकार वहाँ चलता है और वह मिथ्यात्व गलकर नाश हो जाता है। यह लाईन है, अनादिकी मोक्षमार्गमें और आत्मकल्याण करनेकी यह लाईन है और यह मार्ग है। इस मार्गको छोड़कर नया मार्ग अपनाना नहीं—अन्य मार्ग पर जाना नहीं, अन्यथा उन्मार्गमें जाना हो जायेगा ऐसा कहते हैं।

अतः जो भूल होती है, सामान्यतः जो भूल होती है कि बाह्य त्यागके परिणाम भी मुमुक्षुजीवको आये, व्रत, शील, संयमके परिणाम भी मुमुक्षुजीवको आये, यह संभवित है, इस भूमिकामें उसकी संभावना है, नहीं है ऐसा नहीं। तो भी हम आपके आगे लालबत्ती रखते हैं कि ऐसे परिणाम हो तो भी यह भूल मत करना। ऐसी भूल न हो जाये कि जिससे मिथ्यात्वकी पुष्टि हो। ऐसी परम कारुण्यवृत्तिसे यह बात है। इसके अन्दर श्रीगुरुकी करुणाकी वृत्ति है कि देखना, तुझे भले ही व्रत, शील, संयम आये इसकी हमें कोई ज्यादा दिक्कत नहीं है परन्तु

उस परिणामकी यदि मुख्यता हो गयी तो मिथ्यात्व जो गालना है उसके बजाय वह पुष्ट हो जाये ऐसी भूल गलतीसे भी न हो जाये, इतनी बात यहाँ हमें कहनी है। और ऐसी भूल प्रायः हो जाती है। इसीलिये यह कहनेमें आता है। ऐसा कहना है। इसप्रकारसे यह विषय बहुत ही उपकारी है।

यह तो चारित्रके परिणाम लिये परन्तु आदि-आदि जो बात आती है न, उसमें ज्ञानका विषय भी लिया जा सकता है। जैसे चारित्रके क्षयोपशममें ब्रह्मचर्य और व्रत, संयम अंगीकार किया जाता है वह चारित्रगुणके क्षयोपशमका कार्य है। उसी प्रकार ज्ञानके क्षयोपशममें कार्यमें भी जीव विकास करे, आगे बढ़े तब उसे अनेक प्रकारसे तत्त्वके सम्बन्धमें शास्त्रके अनेकविध विषयोंमें उसके ज्ञानमें संग्रह होता है, उसका वह विषय होता है। तब भी उसे आत्माका भान हुआ है या नहीं? नहीं तो 'मुझे ज्ञान हुआ' यह शल्य घुस जायेगा। मुझे ज्ञान है, मुझे समझ है, मैं जानता हूँ, मैं समझता हूँ। और उसमेंसे स्वच्छन्द फटेगा, उसमेंसे अवगुण बढ़ेंगे।

आदिमेंसे वह पहलू भी निकाल सकते हैं कि आत्मभाव होने पूर्व अथवा तो आत्मा भास्यमान हो तदर्थ यह शास्त्रज्ञानका विषय है, शास्त्र निमित्त है। वह यथार्थ प्रकारसे ज्ञानमें आये बिना जो कुछ ज्ञानमें संग्रह हुआ चारों अनुयोगोंमेंसे, उसमें भी कहीं भी मैं धर्ममें आगे बढ़ा हूँ अथवा धर्मके कारण आगे बढ़ा हूँ इस मान्यतामें वह मिथ्यात्व एवं शल्यको पुष्ट कर बैठेगा। यह उसमेंसे ज्ञानके आचरणमें और ज्ञानके क्षयोपशममें भी इस बातका विचार कर लेना चाहिये। ऐसा है। अन्यथा उसमें भी गड़बड़ी होती है। और वह भी बहुत बड़ी गड़बड़ी होती है।

मुमुक्षु :— ...

पूज्य भाईश्री :— यह मालूम नहीं पड़ता। मुमुक्षुतामें कभीकभार मालूम नहीं पड़ता। बाहरमें उधाड़ कम हो तो

उसके ज्ञानकी समझके बारेमें मालूम नहीं पड़ता। बाहरमें चारित्रका क्षयोपशम न हो तो एकदम सामान्य मनुष्योंकी प्रवृत्ति हो ऐसी प्रवृत्ति होती है। अतः इस प्रकारसे उसका उसे नाप निकालनेमें नहीं लेना चाहिये। इतना ही नहीं, कोई सम्यग्दृष्टि ज्ञानी हो तो भी उसे लोग नहीं पहचान पाते। सामान्यरूपसे लोग सम्यग्दृष्टि नहीं पहचान सकते हैं उसका भी यह एक कारण है कि बाहरमें उसका कोई उतना फेरफार नहीं होता, इसीलिये लोग उन्हें पहचान नहीं सकते। ऐसा कोई नियम नहीं है। हाँ, इतना है कि सामान्यरूपसे मुमुक्षुजीव वैराग्यवंत होता है। इतना एक सामान्य लक्षण है। और वह वैराग्य मुमुक्षुकी भूमिकामें जरा जोर भी पकड़ता है, तब ऐसा भी लगता है कि मानों ज्ञानीसे भी मुमुक्षुका वैराग्य बढ़ गया हो। ऐसा जोर आता है। और यह एक बाहरमें उसका स्पष्ट दिखनेमें आये ऐसा लक्षण है।

पाँचों इन्द्रियके विषयमें किसी भी प्रकारसे उसे वैराग्य.. वैराग्य.. वैराग्य उपेक्षावृत्ति होती है न? उसे सर्व विषयोंमें उपेक्षा हुई है। अंतरमें एक आत्माकी अपेक्षा करनी है अतः यह पहलू उसका बाहरमें उत्पन्न होता है। परन्तु वह तो मुमुक्षुतामें यथार्थता बिना भी वैराग्य आता है और यथार्थता आती है तब भी वैराग्य आता है। अतः मात्र इससे नाप नहीं निकलता। फिर भी वैराग्य आता है, वैराग्य होता है यह उसका खास पहलू है।

ऐसा ही उसका भक्तिका भी पहलू है कि उसका हृदय उतना भीगा हुआ होता है कि देव-गुरु-शास्त्र एवं उपकारी सत्पुरुषके प्रति अत्यंत भक्तिके परिणाम भी होते हैं। क्योंकि उसे वह अपने आत्माका स्वरूप बतानेमें निमित्त होते हैं। ऐसा ज्ञात होनेपर उसे उनके प्रति उपकारकी, भक्तिकी, बहुमानकी वृत्ति उत्पन्न हो जाती है। परन्तु ऐसा अज्ञानीको अयथार्थतामें भी होता है। दोनों पहलू ऐसे हैं कि यथार्थपने भी होते हैं और अयथार्थपने भी होते हैं। अतः मात्र इसीसे उसका नाप नहीं निकलता। परन्तु यह

दोनों यथार्थतामें तो होते, होते और होते ही हैं। नहीं होते ऐसा नहीं बनता। ऐसा है।

मुमुक्षु :— अज्ञानीका वैराग्य ज्ञानीसे ज्यादा होता है?

पूज्य भाईश्री :— हाँ, ऐसा सामान्यरूपसे तो एक बार हो जाना चाहिये। सम्यग्दर्शन प्राप्त करे वह वैराग्यकी बात थोड़ी विशेषतावाली है। ऐसा बनता ही है। क्योंकि ज्ञानीको एक केपेसीटि आ गयी है। अपनी दशामें एक शक्ति आ गयी है इसीलिये उदयमान स्थितिमें कम वैराग्य दिखाई दे ऐसा कभी हो भी सकता है, कोई पुण्यका ऐसा उदय हो तो। परन्तु जिसे अभी आत्मा प्राप्त करनेमें आगे बढ़ना है, आगे धँसना है, जोर करना है उसे बहुत वैराग्य आता है।

उपदेश छायामें इस सम्बन्धित एक बोल है। श्रीमद् राजचंद्रजीके शब्दोंमें ध्यान खींचे ऐसा विषय है। सत्पुरुषकी अपेक्षा मुमुक्षुका त्याग वैराग्य बढ़ जाना चाहिये। लो ठीक! तुझे जोर करना है न? एक बार तो तुझे ऐसा होना चाहिये, उसका यह प्रकार आ जाना चाहिये कि मानों सत्पुरुषसे भी उसका त्याग-वैराग्य अधिक है। कैसी बातें लिखी हैं! 'सत्पुरुषकी अपेक्षा मुमुक्षुका वैराग्य बढ़ जाना चाहिये। मुमुक्षुको जागृत-जागृत होकर वैराग्य बढ़ाना चाहिये।' देखो! कैसी बात लिखी है! अंतर जागृतिपूर्वक बात ली है, हाँ! कोई यूँ ही त्याग-वैराग्य बढ़ा दे इसलिये दूसरी बात तुरन्त साथमें जोड़ दी है कि मैं ज्ञानमात्र हूँ ऐसी अंतर सावधानी और जागृतिपूर्वक उसे वैराग्य बढ़ना चाहिये।

'सत्पुरुषका एक भी वचन सुनकर स्वयंमें दोष होनेपर अत्यंत खेद रखेगा, और दोष कम करेगा तब ही गुण प्रगट होंगे।' उसे कितनी जागृति है कि उसे सत्पुरुषके वचनमेंसे अपनी कमी और अपना दोष और अपनी क्षति दिखती है। देखा! यह जागृतिका लक्षण है। सत्पुरुषके वचन जिसको स्वलक्ष्यसे अंगीकार करना है। यह इस

प्रकारमें है। उसे उस-उस विषयमेंसे गुण-दोषका विषय मुख्यपने उसके ज्ञानमें और जाँचनेमें रहता है। तब उसे अपने दोष जाननेमें आते हैं और उसे उसका खेद होता है। और इस तरह वह गुण प्रगट करनेमें यह प्रक्रिया उसके परिणमनमें होती है।

इस तरह 'सत्समागमकी जरूरत है।' किसको? मुमुक्षुजीवको सत्समागमकी जरूरत है। ज्ञानीको, मुमुक्षुजीव सत्समागममें आये उनकी भक्ति उसकी आवश्यकता नहीं है। ऐसा है उसमें। 'बाकी सत्पुरुष जैसे एक राही दूसरे राहीको रास्ता बताकर चला जाता है, वैसे बताकर चले जाते हैं।' उन्हें इस जगतमेंसे कुछ भी नहीं चाहिये। वे मार्ग बता देते हैं। देख भाई! इस मार्गसे, यह अनुभवका मार्ग है और इस मार्गसे हम आगे बढ़े हैं। यह परम निष्कारण करुणाबुद्धिसे तुझे कहते हैं। हमें कुछ अपेक्षा है और उस अपेक्षित बुद्धिसे हम यह बात नहीं करते हैं। ऐसी निस्पृहतासे वे बात करते हैं। ७११ पृष्ठ पर यह वचन है।

परन्तु यहाँ तो गुरुदेवश्री जो विशिष्ट बात करते हैं वह यह है कि त्याग वैराग्य बढ़े तो भी आत्मभान पर जिसका लक्ष है कि मुझे मेरा आत्मभान करना है, उसे त्याग वैराग्य होनेपर भी उस पर लक्ष नहीं जायेगा। उसमें क्या हुआ? यह तो सहज ही परिणाम मंद रहते हैं। उसमें क्या? तीव्र कषायके परिणाम सहज ही नहीं होते हैं, उसमें क्या? इस तरह उसकी मुख्यता वह नहीं करेगा। आत्मभान करनेकी दिशामें वह आगे बढ़ेगा, उसमें वह सावधान होगा। तो उसका मिथ्यात्व गल जायेगा। और ऐसा नहीं होगा तो मिथ्यात्व पुष्ट होनेमें देर नहीं लगेगी। क्योंकि छद्मस्थ जीव कहीं न कहीं तो मुख्यता करता ही है। छद्मस्थ जीवके परिणमनमें मुख्य-गौण करनेका हमेशा बनता है। यह जो मुख्य-गौणका फेक्टर है, यह जो मुद्दा है, उसे यहाँ यथास्थानमें बिठानेकी बात है। कहनेके अन्दर दृष्टिकोण इतना ही है।

गुरुदेवका जो कहनेका दृष्टिकोण है वह इतना ही है इसके अन्दर कि मुख्य-गौण तो तुझे होता ही है। अब यह मुद्दा बहुत महत्वपूर्ण है। उसे यथास्थानमें रखनेकी यह बात है। उसमें यदि स्थानफेर हो गया तो मार्ग बदल जायेगा, पूरी रीत बदल जायेगी, पूरी विधि बदल जायेगी और किसी भी तरहसे तुझे सन्मार्ग पर आनेका नहीं बनेगा, उल्टा धर्मके क्षेत्रमें भी तू मिथ्यात्वको पुष्ट कर बैठेगा। इस प्रकारकी यह बात है। इस प्रकारसे यह विषय बहुत सूक्ष्म है।

किसी भी प्रकारसे वह मुख्यता कहाँ करता है? यह कीमत देनेका बोल यहाँ इसलिये लागू होता है कि कीमत देनेपर मुख्यता होती है। तो उसे कीमत कहाँ दी? भले ही तूने बाह्य विषयके भोग-उपभोगको कीमत नहीं दी, तो तूने बाह्य विषयके त्याग-वैराग्यको कीमत दी न? यह दोनों एक समान बात हो गयी। जैसे भोग-उपभोगको कीमत नहीं दी तो त्याग-वैराग्यको तो तूने कीमत दी न? आत्मभान करनेकी ओर तेरी मुख्यता होनी चाहिये। ऐसा न हो तो भी धर्मके क्षेत्रमें भूल होनेके बहुत रास्ते हैं, स्थान बहुत है। और उसमें भी बाह्य चारित्रमें तो जीव भूलता ही है, परन्तु ज्ञानके क्षयपोशममें भी जीव भूलता है। क्योंकि ज्ञान है वह आत्मज्ञान और आत्मदर्शनका मुख्य निमित्त है। चारित्र, व्रत, शील, संयम और वैराग्यसे भी समीप निमित्त तो उसे शास्त्रज्ञान है, तत्त्वज्ञान है। परन्तु तत्त्वज्ञानमें भी स्वरूपका भावभासन होकर आत्मभान हो उस विषयमें अंतरंगमें आगे बढ़नेके बजाय एकदम शास्त्रज्ञानके विकासमें आगे बढ़े तो भी उसे परलक्षी शास्त्रज्ञान मार डालेगा। उस परलक्षी शास्त्रज्ञानमें शल्य उत्पन्न होंगे और मिथ्यात्वकी पुष्टि हो जायेगी। यह प्रकार आयेगा। इस तरह बहुत महत्वपूर्ण दृष्टिकोणसे इस बात पर ध्यान खींचा है।

बोल-२४९, दि. २३-५-१९८३, प्रवचन क्रमांक-१०८

रागको जाननेसे ज्ञान मलिन नहीं होता, पर रागको अपना माननेसे ज्ञान मलिन होता है। 'राग मेरा है' ऐसा माननेवाला अपने जीवका घात करता है और 'राग मेरा नहीं' ऐसा माननेवाला अपने जीवकी रक्षा करता है। २४९.

(१७:३० मिनटसे)

२४९. 'रागको जाननेसे ज्ञान मलिन नहीं होता,...' वास्तवमें तो सम्यग्ज्ञान कि जिसमें राग ज्ञात होता है वह ज्ञान तो पवित्र है। रागको जाननेसे ज्ञान मलिन नहीं होता परन्तु सम्यग्ज्ञान कि जो पवित्रस्वरूप है, जो ज्ञान स्वयं ही पवित्र है वह ज्ञान रागको जाननेपर भी पवित्र ही रहता है। ठीक! क्यों? कि रागकी मलिनता के साथ वह मिश्रित नहीं होता। रागरस, मलिनरस उसमें अभेद नहीं होता। इसलिये ऐसा है कि रागको भिन्नपने जानता हुआ ज्ञान पवित्र है। ठीक! ऐसा है। रागको जाननेवाला ज्ञान मलिन तो नहीं है परन्तु रागको भिन्नपने जाननेवाला ज्ञान तो पवित्र है। ऐसा है। ठीक! हमने इसमेंसे प्रतिपक्ष बोल ले लिया। मलिनके सामने पवित्र।

'रागको जाननेसे ज्ञान मलिन नहीं होता...' तो क्या होता है? कि रागको भिन्नपने जाननेवाला ज्ञान तो अपनी पवित्रतामें बराबर रह जाता है। उसमें कोई फर्क नहीं पड़ता। तो ज्ञान कब मलिन होता है? 'रागको अपना माननेसे ज्ञान मलिन होता है।' ऐसा है। परपदार्थको जानना वह दोषका या मलिनताका कारण नहीं है। रागरूपी मलिनताको जानना यह दोषका या मलिनताका कारण नहीं है। परन्तु परमें और रागमें स्वपना होनेपर, स्वपना मान लेने पर, स्वपने स्वीकृत करने पर, श्रद्धान होनेपर ज्ञानमें मलिनता उत्पन्न हो जाती है। वह तीव्र रागरसे रंजित ज्ञान है, वह ज्ञान मलिन ज्ञान है ऐसा कहनेमें आता है।

मुमुक्षु :— पहले ऐसा कहते थे कि राग अपना दोष है, अपना ही है ऐसा तू जान। कर्मके कारण अथवा परके कारण नहीं... यहाँ कहते हैं कि राग तेरा है।

पूज्य भाईश्री :— तेरा नहीं है अर्थात् तेरी पर्यायमें उत्पन्न नहीं होता है ऐसा अर्थ नहीं लेना। तेरे अपने स्वरूप वह नहीं है, तू उस स्वरूप नहीं है। एक बहुत सुन्दर बात आती है कि इस शरीरमें रोग होता है। किडनी खराब होती है तब सुजन आती है। किडनी बिगडती है न? तब सुजन होती है। जब सुजन होती है तब दूसरा मनुष्य बहुत सुन्दर न हो अथवा बहुत सुन्दर दिखता न हो, थोड़ी चमड़ी गोरी हो परन्तु दुबला हो तो उतना सुन्दर नहीं दिखता हो, परन्तु जहाँ सुजन होती है तब उसका रूप दिखता है। भाई! आप तो बहुत सुन्दर लगते हो। क्या होगा?

कहते हैं कि वह सुजन है उसमें जहरकी व्याप्ति है। क्या हुआ? किडनीके फंक्शनमें तकलीफ हुई, विकृति हुई उसमेंसे जहरकी उत्पत्ति हुई और वह जहर पूरे शरीरमें व्याप्त हुआ और सुजनके रूपमें दिखाई दिया। अब, वह शरीरकी अवस्था है या नहीं? या कोई दूसरी अवस्था है? वह अवस्था शरीरकी है। किसकी अवस्था है? परन्तु यह मुझे इष्ट नहीं है। यह रखने जैसा नहीं है। लेकिन ऐसा रूप निखरा है न? रूपको मैं तोड़ दूँ? भाई! वह रूप नहीं निखरा है। वह जहर व्याप्त हुआ है और उसका इलाज नहीं होगा तो मृत्यु होनेमें देर नहीं लगेगी।

हमारे एक पुराने भागीदार थे। वह ट्रावेलिंगमें गये

उसमें कोई डॉक्टरके साथ मिलनेका प्रसंग बन गया। उन्होंने पैरमें सुजन देखी। कहा, आपके पैरमें सुजन है? थोड़ी गंभीर बात है। यह आदमी थोड़ा हिम्मतवाला था। (उसने कहा), ऐसा शरीरमें चलता रहता है। हम तो कुछ गिनते नहीं। हमें पूरा दिन घुमना होता है, ट्रावेलिंग इतनी करनी पड़ती है। उसमें यह सुजन-बुजनको कहाँ गिने? जो डॉक्टर था वह समझ गया कि ये गंभीर भूल कर रहा है। उसने कहा, आप छः महिनेमें मर जाओगे। बारह महिने भी नहीं निकालोगे। सामनेवाला बोलनेमें हुशियार था। डॉक्टर! आप क्या यह डॉक्टरी कर रहे हो? ऐसी डॉक्टरी करोगे तो उल्टा पड़ जायेगा। तो डॉक्टरने कहा, क्यों? कि बारह महिनेके बाद मैं आपका यह डॉक्टरका सर्टिफिकेट फाड़ने आऊँगा। क्या कहा? बारह महिनेके बाद इस गाँवमें मैं पुनः आऊँगा और आपका यह सर्टिफिकेट फाड़ दूँगा। उसे फाड़नेको ही आनेवाला हूँ। मरनेकी बात कही तो उसने उग्रतासे बात की। वह आदमी छः महिनेमें मर गया। वास्तवमें उसने ध्यान नहीं दिया। रागने एक-डेढ़ महिनेमें इतनी उग्रता पकड़ी कि बिस्तरवश हो गया। और दूसरे महिने-डेढ़ महिनेमें तो (खत्म)। ३०-३२ वर्षकी उम्र, हाँ! युवावस्था थी। जो जोर करता था उसका कारण यह था कि छोटी उम्र थी उसकी। खलास, खत्म हो गया। जो सुजन थी उसको क्या गिनना? वह शरीरकी अवस्था होनेपर भी तंदुरस्ती बढ़ानेके लिये उसे, तंदुरस्त स्वरूपमें स्वपनाका वजन देनेके लिये, यह मेरा नहीं है ऐसा कहनेमें आता है। हेतु प्रधानतासे बात लेनी।

जहाँ जो अपेक्षा हो वहाँ दूसरी अपेक्षा लगाओगे, तो वहाँ जिस अपेक्षासे कहना है वहाँ कहनेवालेकी (अपेक्षा) मर जाती है। वह ज्ञानमें गौणपने रखनेकी चीज

है। राग जीवका है, ऐसा वहाँ गौणपने रखनेकी चीज है। वहाँ रागका निषेध करनेका हेतु है। रागका नाश करनेका हेतु है, इस हेतुको उभारनेकी जो विविक्षा है, जो अपेक्षा है उस अपेक्षाको तोड़नेके लिये अथवा ढीली करनेके लिये दूसरी अपेक्षाकी टांग नहीं अडानी चाहिये। ऐसा है।

एक मनुष्यसे आपको कुछ पैसे लेने हैं और आप लेने जाओ। भाई! मेरा इतना रुपया लेना निकलता है तो आप अवश्य ही मेरे पैसे वापस दे दीजिये। मेरा रुपया आपके पास है। सामनेवाला रुपया देनेके बजाय ऐसा कहे कि भाई! मेरा इतना रुपया लेनेका निकलता है। मुझे वापस दीजिये। ठीक! जूठ ही कहे। तब आप क्या कहते हो? आपका लेना निकलता है? इसका मतलब क्या हुआ? आपने देना है ऐसा स्वीकार कर लिया ऐसा अर्थ है? आपने जो प्रश्नचिह्न लगाया उसका अर्थ यह है कि आपकी बात बिल्कुल जूठी है, असत्य है। लेकिन आपकी बात जूठी है ऐसा तो आप बोलते ही नहीं हो। आपने तो उसको सिर्फ प्रश्न ही किया कि अच्छा आपका लेना निकलता है? किस बातका लेना निकलता है? ऐसा प्रश्न उठाया उसमें उसकी बात जूठी ऐसा तो आपने नहीं कहा। लेकिन यह बोलनेकी आवश्यकता नहीं है। इसका मतलब ही यह हुआ कि आपका लेना बिल्कुल नहीं बनता और लेना तो मुझे है। एक पद्धति होती है।

जोर देनेकी एक पद्धति है। उसमें शब्दके साथ और शब्दके अर्थके साथ मारामारी नहीं होती। शास्त्रमें ऐसी अनेक शैली है। उसमें स्वद्रव्य पर स्वपनेका जोर किस तरह दिया जाता है इतना ही प्वाइन्ट वहाँ ग्रहण करनेका है। इससे अतिरिक्त वहाँ शब्दके अर्थमें जाओगे तो दूसरा ही अर्थ शब्दका होता होगा।

पूज्य बहिनश्री की वीडियो तत्वचर्चा
मंगल वाणी-सी.डी. १०-C



मुमुक्षु :- माताजी! गुरुदेव के वचनमृत में ६ बोल में आता है कि पूर्णता के लक्ष्यसे शुरुआत ही सच्ची शुरुआत है। तो पूर्णता यानी क्या लेना? सिद्ध दशा या त्रिकाली स्वभाव?

पूर्णता यानी सिद्ध दशा के लक्ष्यसे या पूर्ण त्रिकाली स्वरूप के लक्ष्यसे? पूर्णता के लक्ष्यसे शुरुआत ही सच्ची शुरुआत है।

समाधान :- उसमेंसे दोनों अर्थ निकलते हैं। पूर्णता के लक्ष्यसे यानी आत्मा परिपूर्ण-स्वभाव परिपूर्ण है, उसे लक्ष्यमें लेनेसे शुरुआत सच्ची होती है। लेकिन शुरुआत करके कहाँ पहुँचना है? पूर्णता पर्यंत। इसप्रकार ऐसा अर्थ-दोनों अर्थ निकलते हैं। द्रव्य स्वयं स्वभावसे परिपूर्ण शुद्ध है। वह यदि उसे लक्ष्य में आये और उसकी पहचान हो, उसका आश्रय ले तो ही सच्ची शुरुआत होती है।

दूसरा अर्थ यह है कि शुरुआत की और ध्येय कहाँ बाँधा? कहाँ जाना है? कि आत्मा की परिपूर्ण निर्मलता हो, वहाँ तक पहुँचना है, ऐसे लक्ष्य में ले तो ही सच्ची शुरुआत होती है। किस गाँव में जाना है, ऐसा समझकर यदि चलना शुरु करे तो ही वह बराबर है। लेकिन ध्येय बिना सच्ची शुरुआत हो ही नहीं सकती। दोनों अर्थ उसमेंसे निकलते हैं। पर्याय परिपूर्ण प्रगट करनी है, केवलज्ञान प्रगट करना है, उसके लक्ष्यसे साधकदशा की शुरुआत होती है। सम्यग्दर्शन एक अंश है। द्रव्य को तो लक्ष्य में लिया कि द्रव्य स्वभावसे परिपूर्ण (है उसे) लक्ष्य में लिया। एक अंश में साधक दशा हुई, लेकिन अभी साधना बाकी है। केवलज्ञान की प्राप्ति वीतरागदशा प्रगट करनी है। यह उसे लक्ष्य में हो तो ही उसकी सच्ची शुरुआत होती है।

सम्यग्दर्शन हो गया इसलिये तुरंत पूर्णता नहीं हो जाती, अभी तो अंश प्रगट हुआ है। अभी तो परिपूर्ण वीतरागदशा बाकी है। पूर्णता के लक्ष्यसे शुरुआत होती है, सच्ची शुरुआत होती है।

मुमुक्षु :- माताजी! कोई जीव सम्यग्दर्शन का ध्येय रखकर शुरुआत करे तो वह बराबर नहीं है?

समाधान :- सम्यग्दर्शन का ध्येय रखकर शुरुआत करे तो वह शुरुआत नहीं है। सम्यग्दर्शन प्रगट करना है, लेकिन सम्यग्दर्शन किसके आश्रयसे प्रगट होता है? सम्यग्दर्शन, द्रव्य के अवलम्बन बिना सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं होता। सच्ची शुरुआत सम्यग्दर्शन के लक्ष्यसे नहीं होती। द्रव्य के लक्ष्यसे शुरुआत होती है अथवा तो मुझे परिपूर्ण निर्मलता प्रगट करनी है, ऐसे शुरुआत होती है। मात्र सम्यग्दर्शन,.. सम्यग्दर्शन की भावना होती है कि अनादिकालसे यह सम्यग्दर्शन कि जिससे भव का अभाव होता है, ऐसा सम्यग्दर्शन जीवने प्राप्त नहीं किया है। सब किया है, लेकिन एक सम्यग्दर्शन कि जिससे भव का अभाव हो, आत्मा की स्वानुभूति दशा प्रगट हो, आत्मा प्राप्त हो, जिससे भव का अभाव होता है ऐसा सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं किया। इसलिये सम्यग्दर्शन प्राप्त करने की भावना होती है। लेकिन सम्यग्दर्शन किसके आश्रयसे होता है और सम्यग्दर्शन की शुरुआत कैसे होती है, यह सब जाने बिना सम्यग्दर्शन के लक्ष्यसे सम्यग्दर्शन, सम्यग्दर्शन के आश्रयसे सम्यग्दर्शन अथवा सम्यग्दर्शन को लक्ष्य में रखकर सम्यग्दर्शन नहीं होता। उसकी भावना होती

है, लेकिन उसे तो द्रव्य का आश्रय होता है। और पूर्णता लक्ष्य में होती है। सम्यग्दर्शन के बाद वीतरागता प्रगट करनी होती है।

मुमुक्षु :- पूर्णता के दो अर्थ किये। एक अर्थ हमें मान्य है कि स्वभाव के आश्रयसे, ज्ञायक के आश्रयसे ही सम्यग्दर्शन प्रगट होता है। लेकिन सम्यग्दर्शन का ध्येय रखे, मोक्ष का ध्येय नहीं परन्तु सम्यग्दर्शन का ध्येय रखकर वह प्रयत्न कर सके या नहीं कर सकता?

समाधान :- सम्यग्दर्शन का ध्येय नहीं, आत्मा का ध्येय होना चाहिये। सम्यग्दर्शन की भावना होती है।

मुमुक्षु :- पूर्णता का ध्येय होना चाहिये? मोक्ष का ही ध्येय होना चाहिये।

समाधान :- मोक्ष का ध्येय होना चाहिये। द्रव्य का ध्येय और पूर्णता का ध्येय होना चाहिये।

मुमुक्षु :- किसीको ऐसा लगे कि वर्तमान में इतनी बड़ी बात करने के बजाय सम्यग्दर्शन का ध्येय रखकर स्वभाव का आश्रय लो, तो क्या वह कहीं अटका जाता है या उसे प्रगट हो?

समाधान :- लेकिन उसे स्वभाव का आश्रय आयेगा ही नहीं, मात्र अधूरा ध्येय हो तो। द्रव्य का आश्रय कब आये? कि ध्येय में उसे परिपूर्णता हो तो ही उसे द्रव्य का आश्रय होता है।

मुमुक्षु :- आपसे यही जानना था। सम्यग्दर्शन के ध्येयसे सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं होता। लक्ष्य भी पूर्णता का हो और ध्येय भी पूर्ण प्राप्त करने का हो तो उसे सम्यग्दर्शनसे लेकर सभी पर्यायें..

समाधान :- सभी पर्यायें निर्मल होती है। सम्यग्दर्शन प्राप्त किया इसलिये मैंने सब कर लिया ऐसा सम्यग्दृष्टि को होता नहीं। वह तो अंश है, ऐसा उसे बराबर ख्याल है। उसकी साधना की शुरुआत होती है। अभी तो उसने साधना में मात्र एक कदम रखा है। अभी तो ओर आगे जाना है। प्राप्त करनेवाले को, बस, हो गया, ऐसा नहीं होता। वह तो भावना ऐसी होती है कि अनादिकालसे सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं किया है वह प्राप्त हो तो भव का अभाव हो तो ही मोक्ष की शुरुआत होती है, इसलिये उसकी भावना (होती है)। उसका उपाय क्या? उसके ध्येय में क्या होता है? वह तो उसे बराबर जानना पड़ता है। उतने में संतुष्टपना हो जाय तो उसे सम्यग्दर्शन नहीं हो सकता।

मुमुक्षु :- इतनी हद तक पहुँचने के बाद संतुष्टपना तो नहीं होता है न?

समाधान :- संतुष्टपना नहीं होता।

मुमुक्षु :- उतनी पात्रता हुई हो..

समाधान :- उतनी पात्रता हुई हो। एक अंश में संतुष्टपना नहीं होता। जिसे पूर्णता चाहिये वह अटकता नहीं। जिसका पुरुषार्थ मन्द पड़े उसकी कोई बात नहीं है। वह तो पहुँचेगा नहीं। उसके ध्येय में पूर्णता होती है। ध्येय में पूर्णता होती है कि मुझे पूर्णता प्राप्त होओ। सम्यग्दर्शन के ध्येय में पूर्णता होती है।

मुमुक्षु :- आपने मुद्दे की बात कही कि आश्रय भी पूर्ण का और ध्येय भी पूर्ण हो उसे ही सम्यग्दर्शनसे लेकर सब प्रगट होता है।

समाधान :- हाँ, उसे ही सब (प्रगट होता है)। आश्रय भी पूर्णता का और ध्येय भी पूर्णता का होना चाहिये।

मुमुक्षु :- माताजी! गुरुदेव के वचनामृत में आता है कि शास्त्र के शब्द बिना भाव भासित होना चाहिये। पुरुषार्थ मूलमें-से होना चाहिये। दूसरा कम समझ में आये उसका कुछ नहीं। अन्य सब विकल्प बन्द हो और अन्दरसे आत्मा सम्बन्धित विकल्प चलते ही रहे और निरंतर चलते रहे तो उसे सच्ची लगन है। फिरसे पढ़ें? शास्त्र के शब्द भाव भासित होना चाहिये।

समाधान :- अंतरसे खुद को निश्चय होना चाहिये। अंतरसे विचारकर स्वभाव की पहचान होनी चाहिये। मात्र शास्त्र के शब्दसे नहीं, परन्तु शास्त्र क्या कहते हैं उसका आशय ग्रहण करके अंतरसे भाव भासित हो, अंतरंगसे खुद समझ में आना चाहिये।

मुमुक्षु :- मात्र शास्त्र पढ़कर निर्णय करे ऐसा नहीं।

समाधान :- ऐसे नहीं। खुद को अंदरसे स्वभाव का भावभासन होना चाहिये कि शास्त्र तो कहते हैं लेकिन ऐसा ही है, ऐसा स्वयं को अंतरसे लगना चाहिये। अंतरमें-से उसे ऐसा दृढ़ विश्वास आता है कि बस, यही वस्तु का स्वरूप है, अन्य कुछ नहीं है। ऐसा अंतरसे भाव भासित होना चाहिये, तो ही उसका सत्य पुरुषार्थ है।

मुमुक्षु :- शास्त्रवांचन करके निर्णय करे लेकिन भाव तो उसे अंतरसे बैठना चाहिये।

समाधान :- हाँ, भाव अंतरसे बैठना चाहिये।

मुमुक्षु :- कारणपरमात्मा नित्य है और उसको विषय करनेवाली पर्याय अनित्य है, उस अनित्य पर्याय को गौण करने को कहा है या निषेध करने को कहा है?

समाधान :- क्या? कारणपरमात्मा नित्य है?

मुमुक्षु :- गौण करने को कहा है या निषेध करने को कहा है? अनित्य पर्याय नित्य का आश्रय करती है। उस अनित्य पर्याय को गौण रखनी या वह अनित्य पर्याय है ही नहीं ऐसे लेना?

समाधान :- कारणपरमात्मा नित्य है, उसका आश्रय अनित्य पर्याय करती है। लेकिन उस पर्याय पर उसकी दृष्टि, उसका लक्ष्य नहीं है। पर्याय साथ में आती है। उसका निषेध, उसकी दृष्टि में निषेध आता है, लेकिन उसकी गौणता होती है। वह बिल्कुल भिन्न है (ऐसा नहीं आता)। दृष्टि का वह विषय ही नहीं है। पर्याय, दृष्टि का विषय ही नहीं है। दृष्टि एक द्रव्य पर ही ज़ोर देती है। इसलिये उसमें पर्याय सहज ही गौण हो जाती है। दृष्टिमें-से निकल जाती है, परन्तु गौण हो जाती है।

मुमुक्षु :- उसे अभूतार्थ कही है, असत्यार्थ कहा है।

समाधान :- भूतार्थ की अपेक्षासे उसे अभूतार्थ कहा है। उसकी अपेक्षासे। लेकिन पर्याय की अपेक्षासे पर्याय बिल्कुल है ही नहीं, अभूतार्थ यानि बिल्कुल नहीं है ऐसा नहीं है। पर्याय की अपेक्षासे पर्याय है, परन्तु द्रव्य की अपेक्षासे, दृष्टि की अपेक्षासे, भूतार्थ की अपेक्षासे उसे अभूतार्थ कहा।

मुमुक्षु :- तो फिर पर्याय का प्रयोजन क्या? अभूतार्थ है तो अप्रयोजनभूत है।

समाधान :- अप्रयोजन भूतार्थ की अपेक्षासे, बाकी पर्याय है, उसका वेदन होता है। यह संसार पर्याय है, उसका वेदन किसको है? यदि पर्याय है ही नहीं तो कोई वेदन ही नहीं होता। यह सुख-दुःख का जो वेदन होता है वह सब पर्याय में वेदन होता है। फिर शुद्ध पर्याय प्रगट होती है उसका वेदन भी पर्याय में होता है। उसका प्रयोजन है।

जीव दुःखसे छूटना चाहता है, सुख चाहता है और सुख की शुद्धात्मा की पर्याय प्रगट होती है उसका पर्याय में प्रयोजन है। लेकिन वह शुद्ध पर्याय प्रगट कैसे हो? द्रव्य के आश्रय बिना प्रगट होती नहीं। इसलिये द्रव्य का प्रयोजन मुख्य है। लेकिन पर्याय उसमें साथ में आये बिना रहती ही नहीं। पर्याय को निकाल दो तो भी वह आये बिना रहती नहीं। पर्याय द्रव्य का स्वरूप है। उसे ज्ञानमें-से या दृष्टिमें-से निकाल दे, गलत तरीकेसे समझे तो पर्याय का नाश नहीं हो जाता, पर्याय चली नहीं जाती। पर्याय तो रहेगी ही। उसकी दृष्टि में और उसके ज्ञान में, उसकी श्रद्धा में भूल होती है। उसका प्रयोजन भले द्रव्यदृष्टि में नहीं है, लेकिन सुख-दुःख का वेदन सब पर्याय में होता है। इसलिये उसका प्रयोजन

है। मोक्ष में वह प्रगट होता है, साधना में प्रगट होता है। सम्यग्दर्शन पर्याय है, चारित्र पर्याय है। उन सब का वेदन होता है। इसलिये साधकदशा में उसका प्रयोजन है।

मुमुक्षु :- तो भी उसे अभूतार्थ कहा।

समाधान :- हाँ, तो भी उसे अभूतार्थ कहा है। द्रव्य की अपेक्षासे अभूतार्थ है, उसकी अपेक्षासे वह है। स्फटिक निर्मल है। लाल-पीले प्रतिबिंब झलके उसकी अपेक्षासे प्रतिबिंब है, स्फटिक की अपेक्षासे नहीं है।

मुमुक्षु :- वचनमृत का जो बोल पढ़ा न, उसी में आता है। अभूतार्थ इसलिये कहा है कि उसके आश्रयसे शुद्धि प्रगट नहीं होती। (सर्वथा) नहीं है इसलिये नहीं। ऐसा अभूतार्थ का बोल है। अभूतार्थ का अर्थ विद्यमान नहीं है ऐसा नहीं है, परन्तु उसके आश्रयसे शुद्धि प्रगट नहीं होती, उस अर्थ में अभूतार्थ (कहा है)। उस बोल में है।

मुमुक्षु :- माताजीने कहा न, द्रव्य की अपेक्षासे उसे अभूतार्थ कहा है। पर्याय है उसका वेदन है।

समाधान :- पर्याय है, उसका वेदन है, सब है।

मुमुक्षु :- ज्ञान में तो गौण-मुख्य ही होना चाहिये। अभाव और सद्भाव हो तो ज्ञान झूठा है। दृष्टि भले ही बल करे, साथ में रहा हुआ ज्ञान कहता है कि पर्याय है। मैं दुःखी हूँ, जितना प्रगट नहीं हुआ उतना दुःखी हूँ, ऐसा ज्ञान में आता है। (दृष्टि का) तो विषय ही नहीं है, इसलिये उसको तो बल करना ही एक विषय है।

समाधान :- ज्ञान तो जैसा है वैसा जाने, नहीं तो ज्ञान सम्यक् नहीं कहलाता। जो पर्याय है उसका सर्वथा निषेध करे तो ज्ञान झूठा होता है, मिथ्याज्ञान होता है। है, उसकी अपेक्षासे पर्याय है। उसका आश्रय नहीं लिया जाता, वेदन में आता है।

मुमुक्षु :- द्रव्यदृष्टि की अपेक्षासे उसका निषेध किया है।

समाधान :- उसका निषेध उस अपेक्षासे किया है। अपेक्षा समझनी चाहिये, नहीं तो भूल होती है।

मुमुक्षु :- सर्वथा निषेध हो जाय तो एकान्त हो गया। तो फिर वस्तु उत्पाद-व्यय-ध्रुव युक्तं सत्, रही नहीं।

समाधान :- हाँ, तो एकान्त हो गया। उत्पाद-व्यय-ध्रुव युक्तं सत् कहते हैं वह रहता ही नहीं। उत्पाद-व्यय-ध्रुव युक्तं सत् (नहीं रहता)। आपको कुछ पूछना था?

मुमुक्षु :- उसमें आगे लिया है, पुरुषार्थ मूलसे उत्पन्न होना चाहिये। दूसरा कम समझ में आये उसका कुछ नहीं।

समाधान :- समझ में थोड़ा कम आये उसकी कोई दिक्कत नहीं है, लेकिन प्रयोजनभूत समझ में आना चाहिये। अंतरमें-से समझना चाहिये। अंतर मूलमें-से पुरुषार्थ उत्पन्न होना चाहिये। बाहरसे नहीं, परन्तु अन्दरसे स्वयं का आत्मा ही पुरुषार्थ करता है, मूलमें-से। मुझे मेरा स्वभाव ही चाहिये, ऐसा अंतरसे लगना चाहिये।

मुमुक्षु :- अंतरसे पुरुषार्थ उत्पन्न होना चाहिये, उसका अर्थ यह है कि मुझे मेरा स्वभाव ही चाहिये।

समाधान :- ऐसा उसे अंतरसे आना चाहिये, उसकी अंतरंग परिणतिमें-से आना चाहिये।

मुमुक्षु :- पढ़कर या कोई ज्ञानी के पास सुनकर कहे ऐसे नहीं।

समाधान :- सुनकर, पढ़कर ऐसे नहीं। स्वयं को अंतरसे आना चाहिये। सुनकर ऐसा लगे कि ये कुछ अलग कहते हैं, परन्तु स्वयं को अंतरमें-से ऐसी कोई अपूर्वता लगनी चाहिये कि मुझे यह करना ही है। अंतरसे पुरुषार्थ उत्पन्न होना चाहिये।

परम प्रेम नहीं होने देता। पहचान होनेपर निश्चलतासे न रह सके ऐसी जीवकी वृत्ति है, और यह कलियुग है, इसमें जो दुविधामें नहीं पड़ता उसे नमस्कार है।

२७४

ववाणिया, भादों वदी ५, बुध, १९४७

‘सत्’ अभी तो केवल अप्रगट रहा दिखता है। भिन्न भिन्न चेष्टासे (योगादिक साधन, आत्माका ध्यान, आध्यात्मचिंतन, शुष्क वेदांत इत्यादिसे) वह अभी प्रगट जैसा माना जाता है, परंतु वह वैसा नहीं है।

जिनेंद्र भगवानका सिद्धांत है कि जड़ कभी जीव नहीं होता, और जीव कभी जड़ नहीं होता। इसी तरह ‘सत्’ कभी ‘सत्’ के सिवाय दूसरे किसी साधनसे उत्पन्न हो ही नहीं सकता। ऐसी प्रत्यक्ष समझमें आने जैसी बातमें उलझकर जीव अपनी कल्पनासे ‘सत्’ करनेको कहता है, ‘सत्’का प्ररूपण करता है, ‘सत्’ का उपदेश देता है, यह आश्चर्य है। जगतमें अच्छा दिखानेके लिये मुमुक्षु कोई आचरण न करे, परन्तु जो अच्छा हो उसीका आचरण करे।

२७५

ववाणिया, भादों वदी ५, बुध, १९४७

आज आपका एक पत्र मिला। उसे पढ़कर सर्वात्माका चिंतन अधिक याद आया है। हमारे लिये सत्संगका वारंवार वियोग रखनेकी हरिकी इच्छा सुखदायक कैसे मानी जाये? तथापि माननी पड़ती है।

...को दासत्वभावसे वंदन करता हूँ। यदि इनकी इच्छा ‘सत्’ प्राप्त करनेकी तीव्र रहती हो तो भी सत्संगके बिना उस तीव्रताका फलदायक होना दुष्कर है। हमें तो कोई स्वार्थ नहीं है, इसलिये यह कहना योग्य है कि वे प्रायः ‘सत्’ से सर्वथा विमुख मार्गमें प्रवृत्ति कर रहे हैं।

जो वैसे प्रवृत्ति नहीं करते वे अभी तो अप्रगट रहना चाहते हैं। आश्चर्यकारक तो यह है कि कलिकालने थोड़े समयमें परमार्थको घेरकर अनर्थको परमार्थ बना दिया है।

२७६

ववाणिया, भादों वदी, ७ १९४७

सविस्तर पत्र और धर्मजवाला पत्र प्राप्त हुआ।

अभी चित्त परम उदासीनतामें रहता है। लिखने आदिमें प्रवृत्ति नहीं होती। जिससे आपको विशेष विस्तारसे कुछ लिखा नहीं जा सकता है। धर्मज लिखना कि आपसे मिलनेके लिये मैं (अर्थात् अंबालाल) उत्कंठित हूँ। आप जैसे पुरुषके सत्संगमें आनेके लिये मुझे किसी श्रेष्ठ पुरुषकी आज्ञा है। इसलिये यथासंभव दर्शन करनेके लिये आऊँगा। ऐसा होनेमें कदाचित् किसी कारणसे विलम्ब हुआ तो भी आपका सत्संग करनेकी मेरी इच्छा मंद नहीं होगी। इस आशयसे लिखियेगा। अभी किसी भी प्रकारसे उदासीन रहना योग्य नहीं है।

हमारे बारेमें अभी कोई भी बात उन्हें नहीं लिखनी है।

२६९

ववाणिया, भाद्रपद वदी ३, सोम १९४७

ईश्वरेच्छा होगी तो प्रवृत्ति होगी; और उसे सुखदायक मान लेंगे; परन्तु मनमाने सत्संगके बिना कालक्षेप होना दुष्कर है। मोक्षकी अपेक्षा हमें संतकी चरणसमीपता बहुत प्रिय हैं; परन्तु उस हरिकी इच्छाके आगे हम दीन हैं। पुनः पुनः आपकी स्मृति होती है।

२७०

ववाणिया, भादों वदी ४, मंगल, १९४७

सत्

ज्ञान वही कि अभिप्राय एक ही हो; थोड़ा अथवा बहुत प्रकाश, परन्तु प्रकाश एक ही है। शास्त्रादिके ज्ञानसे निबटारा नहीं है परन्तु अनुभव ज्ञानसे निबटारा है।

२७१

ॐ सत्

ववाणिया, भादों वदी ४, मंगल, १९४७

श्रीमान् पुरुषोत्तमकी अनन्य भक्तिको अविच्छिन्न चाहता हूँ

ऐसा एक ही पदार्थ परिचय करने योग्य है कि जिससे अनंत प्रकारका परिचय निवृत्त होता है; वह कौनसा है? और किस प्रकारसे है? इसका विचार मुमुक्षु करते हैं।

लि. सत्में अभेद

२७२

ववाणिया, भादों वदी ४, मंगल, १९४७

जिस महापुरुषका चाहे जैसा आचरण भी वंदनीय ही है; ऐसे महात्माके प्राप्त होनेपर यदि उसकी प्रवृत्ति ऐसी प्रतीत हो कि जो निःसंदेहरूपसे की ही नहीं जा सकती, तो मुमुक्षु कैसी दृष्टि रखे, यह बात समझने योग्य है।

लि.अप्रगट सत्।

२७३

ववाणिया, भादों वदी ५, बुध, १९४७

आपने विवरण लिखा सो मालूम हुआ। धैर्य रखना और हरिच्छाको सुखदायक मानना, इतना ही हमारे लिये तो कर्तव्यरूप है।

कलियुगमें अपार कष्टसे सत्पुरुषकी पहचान होती है। और फिर कंचन और कामिनीका मोह ऐसा है कि उसमें

